क्षर, अक्षर एवं उत्तम पुरुष परिचय

संकलनकर्ता
एक सुन्दर साथ

प्रस्तावना

संसार के सुख अखण्ड अथवा नित्य नहीं हैं। इसलिए इन सुखों का भोग भी क्षणिक है और यह स्थायी नहीं रहता। भोग की इच्छा विषय के भोग से शान्त नहीं होती, अपितु ठीक वैसे ही बढ़ती जाती है जैसे आहुति डालने से अग्नि। भौतिकता स्थायी शान्ति, सुख और समृद्धि देने की शक्ति नहीं रखती। सदा सर्वदा वृद्धि, उल्लास, आनन्द एवं उन्नति हेतु आध्यात्मिक तत्त्व को विकसित करना आवश्यक है। बुरे कर्म, कुत्सित आचार-विचार और दूसरों को कष्ट पहुँचाना आदि दैवी प्रकोप के कारण हैं। संसार की सबसे प्रिय वस्तुएँ—स्त्री, सन्तान, धन एवं भूमि—प्रारम्भ में अमृत के समान होने पर भी अन्त में दुःखदायी हैं। इनकी इच्छा के विपरीत विछोह कष्टदायी है।

पुनर्जन्म, परलोकवास तथा परमात्मा के अस्तित्व सम्बन्धी विज्ञान को अध्यात्मवाद कहा गया है। इसकी जानकारी के लिए मनुष्य (जीव) को धर्म का सहारा लेना पड़ता है। यह धर्म बाहर से थोपी गयी वस्तु न होकर स्वाभाविक है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'यतोऽभ्युदयः निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जो लौकिक उन्नति के साथ-साथ परलोक को भी सुखी बनावे, वही धर्म है। सबसे बड़ा धर्म यह है कि मनुष्य जो अपने लिए चाहता है, वही दूसरों के लिए चाहे और जो अपने लिए तकलीफदेह हो, उसे दूसरों के लिए दुःख देने वाला मानकर न करे।

शाण्डिल्य उपनिषद् के अनुसार 'यस्मात्सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च। तस्मादुच्यते आत्मा इति।' जो सबको सब रूप से प्राप्त हो सके, सबको ग्रहण कर सके एवं जो सबको समेट लेने की शक्ति रखता हो और जो सभी जगह फैला हो, उसे 'आत्मा' कहते हैं। सभी को विकास की ओर ले जाना, समेटना, सबको अपेक्षित रूप में प्राप्त होना, कर्मानुसार इष्ट-अनिष्ट आदि व्यवस्था करने का कार्य चेतन तत्त्व ही कर सकता है, अचेतन नहीं। अतः सभी को सभी जगह अपेक्षित स्वरूप प्राप्त होकर सबको चेष्टा/प्रेरणा प्रदान करने वाला वह परमतत्त्व चेतनात्मा माना गया है।

'आत्म' शब्द से ब्रह्म और जीव दोनों का ज्ञान होता है। आत्मतत्त्व पर वेद-शास्त्र तथा महापुरुषों द्वारा जो भी कहा गया है, वह सब 'अध्यात्म' शब्द से ग्रहण होता है। आत्मतत्त्व है दुर्लभ। बहुतों को यह सुनने को नहीं मिलता, बहुतों को तो सुनने के बाद भी यह समझ में नहीं आता। बिरला ही कोई भाग्यशाली पुरुष इसे किसी दुर्लभ ब्रह्मज्ञानी से प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस तत्त्व को चौंकाने वाला कहा गया है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ २।१९

लोक तथा परलोक के भोगों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान देने वाली 'अपरा विद्या' कही जाती है। इस श्रेणी में चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम्, अथर्व), शिक्षा,

कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि सभी शास्त्र आते हैं। जिसके द्वारा अविनाशी अक्षर ब्रह्म की सही जानकारी हो सके, उसे 'परा विद्या' कहते हैं। पूर्णातिपूर्ण सर्वातीत परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान देने वाली विद्या 'ब्रह्मविद्या' कही जाती है। परा विद्या से अपर ब्रह्म अथवा अक्षर ब्रह्म (अक्षर तत्त्व) का तथा ब्रह्मविद्या से अपर ब्रह्म और परब्रह्म-(अक्षरातीत) दोनों स्वरूपों का पूर्ण ज्ञान होता है। इसी प्रकार अपरा विद्या का रहस्य खोलने के लिए परा तथा ब्रह्म विद्या का ज्ञान आवश्यक है।

सर्वातीत परमात्मा निजस्वरूप से परमात्म पूर्णात्पूर्ण और सर्वाध्यक्ष है। सम्पूर्ण लीलामय होते हुए भी सदा निरपेक्ष है। उसके अलावा अक्षर-ब्रह्म सहित अन्य सभी उसके आश्रित और सापेक्ष हैं। अकेला परब्रह्म परमात्मा ही सबसे ऊपर एवं सभी का स्वामी है। यह अध्यात्म अथवा आत्मतत्त्व की चरम सीमा एवं पूर्ण केन्द्र का स्वामी है। इस केन्द्र से सम्बन्धित सभी तत्त्व 'अध्यात्म' शब्द से जाने जाते हैं।

प्रकृति से परे जो तत्त्व हैं, उन्हें अचिन्त्य कहा जा सकता है। अचिन्त्य भावों को तर्क से नहीं जाना जा सकता। प्रकृति से परे समस्त भाव प्रायः चेतन के स्वरूप में छिपे रहते हैं और इसी नाते (जीव, ईश्वर एवं ब्रह्म तीनों ही) अचिन्त्य हैं। इन्हें तर्क से नहीं जाना जा सकता। इसके रहस्य को समझने के लिए तारतम्य ज्ञान की शरण में जाना होगा। सर्वोत्तम दर्शन अथवा ज्ञान तो वही है जो जीव को विभिन्न लोकों के आवागमन (पुनर्जन्म) के चक्कर से छुटकारा (मोक्ष) दिला दे।

क्षर-पुरुष

दिखायी पड़ने वाले विस्तृत विश्व को सृष्टि, विराट्, विश्व, जगत्, संसार, अण्ड, अण्डकटाह, दुनिया, क्षर पुरुष, क्षणभंगुर, विनश्वर आदि नामों से कहा गया है। वेद, शास्त्र एवं पुराणों ने आदि पुरुष को 'ब्रह्म'[1] कह कर वर्णन किया है, अतः इससे प्रकट होने वाले विश्व को 'ब्रह्माण्ड' नाम से भी पुकारा गया है।

जब सृष्टि नहीं थी, आलोक नहीं था, सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था तब 'अक्षर ब्रह्म' के मन द्वारा अव्याकृत में तेजोमय अण्डा व्यक्त होकर जगत् का कारण बना। हजार युग तक यह अण्डा जल में रहा। बाद में सबलिक ने उसे चेतन (प्राण-शक्ति) युक्त बना दिया। अण्डे को फोड़कर अन्दर से एक पुरुष प्रकट हुआ। यह विराट् पुरुष कहलाया। अक्षर ब्रह्म का मन 'एकोऽहं बहुः स्याम्'—मैं एक ही बहुरूप हो जाऊँ—की इच्छा से प्रेरित होकर हिरण्यमय[2] अण्डे में गर्भ रूप से छिपा हुआ स्थित था। वह उसमें से प्रकट हुआ और उसने अपनी शक्ति से पृथ्वी और आकाश को धारण किया तथा प्राणिमात्र का पालन भी किया।

नर रूप ब्रह्म से उत्पन्न होने वाले जल को 'नार' कहते हैं। आदि-पुरुष (हिरण्य-गर्भ) का प्रथम अयन-स्थान नार-जल में होने से 'हिरण्यगर्भ' को 'नारायण' भी कहा गया

---

[1] जो सदा सर्वदा सबको बृंहण-वृद्धि, उल्लास, आनन्द देने वाला है, जो निरन्तर उत्थान की ओर ले जाने वाला है, जो सबके हित का पोषण करता है एवं सबका आश्रय स्वरूप है, उसे 'ब्रह्म' कहते हैं। "बृंहयतीति ब्रह्म।"

[2] तेज, प्रकाश, ज्योति, हिरण्य सभी का अर्थ एक ही है।

है। विराट् पुरुष के विभिन्न अङ्गों में चौदह लोकों की कल्पना कर वर्णन किया गया है। विराट् पुरुष के कमर से नीचे सात पाताल लोक और ऊपर के भाग में सात स्वर्ग लोकों की रचना का वर्णन है। इस प्रकार, यह विराट् पुरुष अण्डकटाह के चौदह लोकों को लेकर स्थित है।

विराट् पुरुष के पाद तल के नीचे के भाग में गर्भोद् जल है। इस जल में एक कछुआ अवस्थित है। इसके ऊपर शेष नाग है। इसी को शय्या बनाकर नारायण विराजमान हैं। कमला इनकी सेवा में लगी हैं। यह अपने आकर्षण से विश्व को धारण किये हुए हैं, अतः इन्हें संकर्षण भगवान् भी कहते हैं। प्रलय काल में रुद्र रूप में संहार कार्य पूरा करने के नाते रुद्र को इन्हीं का अंश कहा गया है। अनन्त कार्यों को सम्पन्न करने के नाते इन्हें अनन्त भी कहते हैं। इस अनन्त मूर्ति शेष भगवान् के सिर पर यह पृथ्वीमण्डल सरसों के एक दाने-सा लगता है। ब्रह्माण्ड के गर्भ में अष्टावरण के भीतर सबसे पहले होने के नाते इसको 'गर्भोदक' कहा गया है। गर्भोदक समुद्र श्वेत रंग का बताया जाता है। गर्भोदक जल में शयन किये शेषशायी नारायण को आदि पुरुष का प्रतिनिधि स्वरूप बताया गया है। इन्हीं की नाभि से कमल निकल कर ऊपर खिला है जिसके नाल से ब्रह्मादि देवों की उत्पत्ति कही गयी है।

नारायण महाविष्णु के चार व्यूह हैं—संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। यह स्थिति, संहार, रक्षण आदि कार्यों में नियुक्त हैं। संकर्षण व्यूह पाताल में स्थित होकर स्थिति, संहार का कार्य, वासुदेव व्यूह विष्णु रूप होकर रक्षा में लगे हैं। नारायण की वासुदेव नामक निर्गुण मूर्ति दूर-समीप सर्वत्र व्यापक है और इसी स्वरूप का योगीजन ध्यान करते हैं। संकर्षण नामक दूसरी तामसी मूर्ति पाताल में है, जिसके एक अंश भगवान् शंकर कहे जाते हैं। तीसरी मूर्ति धर्म की स्थापना एवं प्रजा-पालन में व्यस्त है और इसे विष्णु कहते हैं। चौथी मुख्य गुण 'रज' के साथ मोहरूपी समुद्र में व्याप्य-व्यापक रूप से विराजमान है। चौथी के प्रतीक ब्रह्माजी सृष्टि-रचना का कार्य करते हैं। संकर्षण के अंशभूत शिवजी, वासुदेव के अंशभूत बैकुण्ठनाथ विष्णु, प्रद्युम्न के अंशभूत सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा अनिरुद्ध के अंशरूप ईश्वर सर्वत्र व्यापक होकर कार्य करते हैं। इन चारों (विश्व, तेजस, प्राज्ञ तथा तुरीय) स्वरूपों की समष्टि को ही महाविष्णु, प्रणव, ओंकार आदि नामों से कहा जाता है। यह चारों व्यूह मनुष्य शरीर में मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार नाम से जाने जाते हैं।

मृत्यु लोक अथवा भूलोक—विराट् के उदर भाग में यह अतल लोक से दस हजार योजन[3] ऊपर स्थित है। पूरा लोक पहले एक शासन में था। मानव-युग में देव-युग की अक्षुण्ण शक्तियों के वैसी न रह पाने से महाराजा प्रियव्रत ने इसे—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर—सात द्वीपों में विभाजित कर दिया। चारों ओर इन्हें घेरते हुए लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दही, दूध और दिव्य जल से भरे सात समुद्र हैं। मध्य में जम्बू द्वीप है। सातों द्वीप एक दूसरे से दुगुने होते चले गये हैं।

मध्य में स्थित जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन का बताया गया है। अन्य द्वीप अण्डकटाह के चारों ओर से ऊपर को स्वर्ग तक बढ़ते चले गये हैं। सुमेरु

[3] आठ मील का एक योजन होता है।

नाम का एक लाख योजन ऊँचा [सोलह हजार योजन भूलोक (पृथ्वी) के ऊपर] सुवर्ण पर्वत मध्य में स्थित है। इस पर्वत के दक्षिण में हरि वर्ष, किंपुरुष वर्ष, भारतवर्ष, पूर्व में भद्राश्व, पश्चिम में केतुमाल, भद्राश्व एवं केतुमाल के बीच इलावृत्त, उत्तर में रम्यक वर्ष, हिरण्य वर्ष, कुरुवर्ष नामक खण्ड है। भारत सुमेरु से सबसे अधिक दूर (२८ हजार योजन) है। इसका आरम्भ उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर है। यह ९ हजार योजन है।

उपर्युक्त प्रत्येक में एक-एक अवतार की प्रतिष्ठा है। हरिवर्ष में नृसिंह, किंपुरुष में राम, भारत में नर-नारायण, भद्राश्व में हयग्रीव, केतुमाल में कामदेव, इलावृत्त में भवानीपति शिवजी, रम्यक में मत्स्य, हिरण्यक में कच्छप, कुरु में वाराह अवतार प्रतिष्ठित हैं। भारत के अतिरिक्त अन्य खण्डों के अवतार मोक्ष देने का अधिकार नहीं रखते। श्रीकृष्ण जी के प्रादुर्भाव के अनन्तर नारायण भी उन्हीं में अन्तर्हित हो गये हैं। भगवान् राम के भारत के प्रतिष्ठित अवतार न होने के कारण राम की उपासना करने वाले कैवल्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण परमात्मा के प्रादुर्भाव से जगत् के सभी देवों के अधिकार छिन गये और अब राम, शिव, गणेश आदि की उपासना करने वालों को भी फल-प्राप्ति के लिए पूर्ण ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण की शरण में ही आना होगा। श्रीमद्भागवत के अनुसार जम्बू द्वीप के भारतवर्ष (खण्ड) के अलावा अन्य आठ खण्ड स्वर्ग भोग से बचे शेष पुण्यों के फल भोगने के स्थान हैं। यह मृत्युलोक के स्वर्ग के समान है। वहाँ के रहने वाले १०-१२ हजार वर्ष की आयु वाले देवजाति के पुरुष विशेष होते हैं और सभी दुःख, भूख, प्यास, शोक, भय, श्रम, अकाल मृत्यु से रहित रहते हैं।

भारतवर्ष के भी इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गन्धर्वद्वीप, वारुण और वर्तमान हिन्दुस्तान नामक भाग हैं (विष्णु पुराण)। रूस, चीन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया सभी भारतवर्ष के अंग थे। आज का भारत तत्कालीन भारतवर्ष का नवाँ भूभाग था। यह भूमि ज्ञान, ध्यान, जप, योग, अहिंसा, सत्य, तप, त्याग, दया, धर्म, दान, पुण्य, यज्ञ, विवेक, विज्ञान, बुद्धि आदि आदर्शों का पवित्र क्षेत्र मानी गयी है। इसे कर्मभूमि कहा गया है, क्योंकि यहाँ से स्वर्ग, बैकुण्ठ, अव्याकृत, विभूति-ब्रह्म और मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अन्य स्थानों पर कर्म फल प्राप्त नहीं होते। अनेक ऋषियों, महर्षियों, २४ अवतारों,[४] २४ तीर्थङ्करों आदि महापुरुषों ने जन्म लेकर इस भूमि को पवित्र किया है। लाखों यती, तपस्वी, योगी यहीं सफल हुए। श्री पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने भारत-भूमि को ही ब्रह्म सृष्टि हेतु चुना।

पाताल लोक—सबसे नीचे का लोक, जो शेष भगवान् से ३० हजार योजन ऊपर स्थित है। यहाँ नाग जाति के प्राणी रहते हैं और स्वर्ग के सुखों से पूर्ण और मणियों के प्रकाश वाला है।

रसातल लोक—पाताल लोक से १० हजार योजन ऊपर स्थित, स्वर्ग से भी अधिक नाना प्रकार के भोग, ऐश्वर्य सुखों से भरपूर, मणियों से प्रकाशित सुन्दर मन्दिरों

---

४ वाराह, यज्ञ, कपिल, सनकादिक, नर नारायण, व्यास, नारद, पृथु, ऋषभदेव, दत्तात्रेय, हयग्रीव, कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, हरि, हंस, वामन, धन्वन्तरि, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि।

वाले इस लोक में दैत्य, दानव, असुर नामक निवात, कवच, कालेय आदि निवास करते हैं।

महातल लोक—मणियों के प्रकाश से युक्त, रसातल से १० हजार योजन ऊपर स्थित इस लोक में तामसी योनि के कद्रू के पुत्र, सर्प जाति के स्त्री-पुरुष रहते हैं। गरुड़ यहाँ नहीं आते।

तलातल लोक—महातल से १० हजार योजन ऊपर स्थित यह लोक महादेव जी द्वारा सुरक्षित है। सुदर्शन चक्र के भय से मुक्त मय नामक दानव अन्य दैत्य, दानव आदि अनेक स्त्री-पुरुषों के साथ सुखों का उपभोग करता है। यहाँ भी मणि का प्रकाश है। यह राजा वलि के आधिपत्य में है।

सुतल लोक—तलातल से १० हजार योजन ऊपर स्थित यह लोक दैत्य, दानवों का निवास है। यह आधि-व्याधि रहित और अति सुन्दर बना है। यहाँ श्रम, तन्द्रा आदि कष्ट नहीं हैं। राजा वलि राजधानी बनाकर यहीं रहता है।

वितल लोक—सुतल से दस हजार योजन ऊपर स्थित इस लोक में हाटकेश्वर महादेव जी भवानी-सहित विराजमान हैं। दानव, दैत्य, राक्षस आदि अनेक जाति के प्राणी रह रहे हैं। सभी सुख के साधन हैं और सभी प्राणी सुखी हैं। यहाँ पर हाटक-रस की नदी बहती है। हाटक नामक रस पुरुषों को दस हजार हाथी की शक्ति भोगों को भोगने हेतु प्रदान करता है।

अतल लोक—वितल से दस हजार योजन ऊपर स्थित इस लोक में मय दानव का चतुर तथा मायावी पुत्र बलासुर का आधिपत्य है। इसने विभिन्न प्रकार के वन, उद्यान, महल, मन्दिर माया से रचकर स्वर्ग को भी छोटा बना दिया है। सभी प्रकार के सुखों को अधिक मात्रा में ले सकने के लिए हाटक रस का यह पान कराता है।

पाताल लोक से अतल लोक तक वर्णित सातों लोकों को बिल-स्वर्ग (भू-विवर) कहते हैं। इन लोकों में प्रत्येक की लम्बाई और चौड़ाई १०० योजन की है और ऊँचाई १० हजार योजन की। यह ऊपर-नीचे हैं। यह स्वर्ग से आकार में छोटे हैं। यह तामसी उपासना वालों को प्राप्त होता है। यहाँ स्वर्ग से भी अधिक कामनाओं के भोग, ऐश्वर्य तथा सुख हैं।

भुवर्लोक—मृत्यु लोक से ऊपर स्थित इस लोक को पितृ लोक, अन्तरिक्ष-लोक, द्यु लोक भी कहते हैं। यहाँ पितृ गण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, भूत-प्रेत, पिशाच आदि योनियों के जीव रहते हैं। मृत्यु लोक वहाँ तक माना गया है जहाँ तक पृथ्वी लोक के प्राणी, पक्षी, विमान आदि जा सकते हैं। इसके आगे सूक्ष्म पवन है। स्थूल शरीर वालों के लिए यह पवन अनुकूल नहीं है परन्तु सूक्ष्म शरीर वाले भूत-प्रेत, किन्नर आदि को यह जीवन शक्ति प्रदान करता है।

स्वर्ग लोक—सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्थित इस लोक में इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवों की पुरियाँ हैं। यहाँ कल्प वृक्ष, पारिजात आदि वृक्ष हैं और इन्द्र प्रधान देवता हैं। ३३ करोड़ देव और उनकी देवांगनाएँ यहाँ स्वच्छन्द विचरण करते हुए स्वर्ग के सुख को भोगते हैं। चन्द्रमा, सूर्य तथा तारागण के विचरण किये जाने वाले विस्तृत अन्तरिक्ष इस लोक के आस-पास होते हैं। दान, पुण्य, यज्ञ, आदि सकाम कर्म करने वाले जीव यहाँ आकर सुख भोगते हैं और पुण्य क्षीण होने पर पुनः मृत्यु-लोक चले आते हैं।

१०० अश्वमेघ यज्ञ करने वाले इन्द्र के पद को भी प्राप्त कर लेते हैं। यह स्थायी नहीं है। जन्म-मरण का भय वहाँ पर भी नहीं मिटता। स्वर्ग का सुख अधिक से अधिक नैमित्तिक प्रलय (ब्रह्मा का एक दिन) तक ही रह सकते हैं।

महर्लोक– स्वर्ग लोक से ऊपर एक करोड़ योजन विस्तार वाले इस लोक में भृगु, अंगिरा, भारद्वाज आदि तपस्वी निवास करते हैं। यह कल्पान्त[५] स्थायी है। धर्मराज के साथ ध्रुवजी यहाँ निवास करते हैं। यहाँ पर गण तथा यमदूत रहते हैं। धर्मराज पाप, पुण्य का निर्णय यहीं करते हैं। तारा-मण्डल यहीं तक सीमित है। यह लोक स्वतः प्रकाशयुक्त है।

जन लोक—महर्लोक से २ करोड़ योजन ऊपर स्थित इस लोक में ब्रह्मा के मानसी पुत्र (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत् कुमार) भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, नारद आदि रहते हैं। यहाँ स्वयं का प्रकाश है। प्रजापति के अनन्त वैभव का स्वर्ग से लाख गुना आनन्द है। यह प्राकृत प्रलय तक स्थायी है।

तपो लोक—जन लोक से ८ करोड़ योजन ऊपर स्वयं प्रकाशित इच्छा से सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले दिव्य स्वरूप पुरुषों का यह लोक निवास स्थान है। यहाँ का आनन्द कल्पान्त स्थायी है। बड़े-बड़े तपस्वी, योगी, सिद्ध, महात्मा तपोबल से सिद्धि प्राप्त कर इस लोक में आते हैं।

सत्यलोक—तपो लोक से १२ करोड़ योजन ऊपर यह लोक स्थित है। इसे हम ब्रह्म लोक भी कहते हैं। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों की पुरियाँ हैं। यहाँ पर पारिजात, कल्पवृक्ष, मँदार, अम्बुज, नाग, पुन्नाग, उत्पल आदि वृक्षों से शोभित निःश्रेयस नाम का वन है। मध्य में बैकुण्ठ धाम है। दाहिनी ओर कैलाश पुरी और बायीं ओर ब्रह्म पुरी है। यहाँ पर नाश, जरा, व्याधि, परिवर्तन रहित दिव्य स्वरूप प्राप्त होता है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियाँ भी यहाँ प्राप्त होती हैं। विशेष तप से सालोक्य, ध्यान की विशेषता से सारूप्य, भक्ति की विशेषता से सामीप्य और ज्ञान की विशेषता से सायुज्य मुक्ति मिलती है। प्राकृत प्रलय[६] अथवा तपोबल घटने पर पुनः आवागमन होता है।

---

५ कल्पान्त में चौदह इन्द्र और चौदह मनु बदल जाते हैं।

६ प्रलय चार प्रकार के बताये गये हैं :

१. जीव के जाग्रत अवस्था से स्वप्नावस्था में जाने को **नित्य प्रलय** कहते हैं।

२. सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को मिला कर ४३ करोड़ २० लाख वर्ष की एक चतुयुगी कहा गया है। एक हजार चतुर्युगी ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतने ही समय की रात्रि होती है। जब ब्रह्मा जी और शेषशायी नारायण सबको समेट कर शयन करते हैं, स्वर्ग तक तथा महर्लोक के कुछ भाग तक जल भर जाता है, त्रिलोकी का नाश हो जाता है, तो इसे **नैमित्तिक प्रलय** कहते हैं।

३. ब्रह्मा के ५० वर्ष बीतने को एक परार्द्ध कहा गया है। २ परार्द्ध बीतने पर ५ तन्मात्रा, अंहकार और महत्तत्व व्यष्टि का नाश हो जाता है। इसे **प्राकृत प्रलय** कहते हैं।

४. महत्तत्व की समष्टि का नाश हो जाना, स्थूल सूक्ष्म कारण का महाकारण में लय हो जाना, महाविष्णु, महामाया, निराकार, सत्, असत्, सभी का अपने मूल स्वरूप में विलीन हो जाना, व्यष्टि और समष्टि के सम्पूर्ण लय हो जाने को **महा प्रलय** कहते हैं।

नरक स्थान—किसी अपराध (पाप कर्म) के बदले मिलने वाले ईश्वरीय दण्ड को दुःख कहते हैं। स्थूल शरीर जो दुःख भोगता है, उसे 'ऐहिक' दुःख कहते हैं। यह चौरासी लाख[७] योनियों में भोगा जा सकता है। स्थूल शरीर से न सहे जा सकने योग्य दुःख जीव को सूक्ष्म शरीर (यातना देह) से नरक स्थान में भोगना पड़ता है। इस दुःख को 'नारकीय' कहते हैं। नरकों का दुःख, ताप, दाह, मार, पीड़ा आदि अनुभव करने के उपरान्त यह अपने मूल भूतों में लय हो जाता है और जीव अपने शेष कर्म के अनुसार जन्म आदि ग्रहण करता है।

नरक स्थान त्रिलोकी के भीतर दक्षिण दिशा में जल के ऊपर, हमारी पृथ्वी से कुछ नीचे, अतल लोक से कुछ ऊपरी भाग में पड़ता है। सातों समुद्रों के बाद गर्भोदक जल और इसके बाद नरक बताये गये हैं। तमोभूमि[८] में तो नीचे से लेकर ऊपर को नरक धर्मराज पुरी के समकक्ष चले गये हैं।

यमदूत जीव को दो-तीन घड़ी में ९९००० हजार योजन मार्ग में घसीटते-खींचते नरक स्थान पर ले जाते हैं। धर्मराज पुरी और यमराज पुरी एक ही पुरी के दो नाम हैं। शुभ कर्मों के फल की व्यवस्था करते समय धर्मराज और नरकों तथा वहाँ के जीवों की व्यवस्था के समय यमराज का पद कहा गया है। यमराज और धर्मराज उपाधियाँ हैं। धर्मराज को महर्लोक में स्थान मिला है। महर्लोक के दक्षिण तरफ नीचे की 'तमोभूमि' में नरकों की रचना है, जो दक्षिण द्वार से सम्बन्धित है। वहीं से जीवों को नरकों में भेजा जाता है। शेष तीन द्वार स्वर्ग, अन्तरिक्ष और वैकुण्ठादि में जाने वाले जीवों के लिए हैं।

नरक में दुष्ट पापियों को टुकड़े-टुकड़े किया जाता है, चूर्ण बनाया जाता है, कहीं वसा, मूत्र, पीव आदि कुण्डों में डाला जाता है; कहीं जलाया, कहीं पकाया जाता है। नरक में सौ वर्ष को एक दिन माना जाता है। श्रीमद्‌भागवत में हजारों नरकों का उल्लेख कर २१ नरकों का वर्णन किया गया है। अन्य का वर्णन राजा परीक्षित नहीं सुन सके। इन नरक स्थानों के आगे अण्डकटाह की सीमा है जो इस विराट् को अपने में लीन किये हुए ब्रह्माण्ड कहलाता है।

मृत्यु लोक के मध्य में सुमेरु और सुमेरु के चारों ओर सातों द्वीप प्रथम की अपेक्षा दूसरा दुगुना विस्तार होते चले गये हैं। इसी प्रकार सातों समुद्र भी क्रमानुसार दुगुने बढ़ते गये हैं। इससे आगे कांचन भूमि जो प्राणीशून्य है, पड़ती है। इससे आगे लोकालोक पर्वतमाला है और यह सूर्यमण्डल से ऊँची और दस-दस हजार योजन चारों ओर फैली है। इसके आगे तमोभूमि है। इस प्रकार पृथ्वी का विस्तार ५० करोड़ योजन है।

इस पृथ्वी के आगे के द्वीप तारा-मण्डल के समान अगम्य हैं। अन्य द्वीप दिव्य हैं और इसलिए सूक्ष्म हैं। यह सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा ही देखे जा सकते हैं। प्राचीन काल में योगशक्ति वाले व्यक्तियों के होने के नाते इस पृथ्वी से इनका सम्बन्ध था।

ब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति से विराट् महाकाश में उसी प्रकार स्थित है, जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारामण्डल आदि विश्व के आकाश में बीच में स्थित हैं और गिरते

---

[७] जल के जीवों की ९ लाख, स्थावरों की बीस लाख, कृमि-कीटों की ११ लाख, पक्षीगण की १० लाख, पशुओं की ३० लाख योनियाँ हैं।

[८] इसका विस्तार २४,६४,८०,००० योजन है।

नहीं हैं । इस विश्व के चारों तरफ सब ओर पृथ्वी आदि आठ आवरण हैं जो एक से एक दस गुने अधिक हैं और सब ओर बढ़ते चले गये हैं ।

अष्टावरण

पृथ्वी तत्व—पृथ्वी तत्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, गुण वाला है और यह अण्ड-कटाह की पचास करोड़ योजन सीमा रूप भित्ति से आवृत्त करता है। इसमें अनन्त करोड़ जीवों की सृष्टि है ।

जल तत्व—जल तत्व के आवरण में शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार गुण हैं। इसका वर्ण श्वेत और देवता विष्णु माना गया है । जल की स्वच्छता के कारण इसमें हजारों सूर्यों का प्रकाश सूक्ष्म रूप से है । अण्डकटाह पृथ्वी गोलक को घेर कर सब ओर यह आवरण दस गुना है ।

अग्नि तत्व का आवरण जल के आवरण से दस गुना विस्तृत है। इसके शब्द स्पर्श और रूप तीन गुण हैं । रक्तवर्ण और शिवजी देवता हैं । यह प्रकाश पूर्ण है ।

वायु तत्व का आवरण अग्नि तत्व को घेरे है। शब्द और शीतल स्पर्श इसके दो गुण हैं । हरा रंग और ईश्वर देवता है । अग्नि का दस गुना तथा ५ खरब योजन विस्तार वाला है । यह वायु लोक करोड़ों चन्द्र सूर्य के प्रकाश से परिपूर्ण है। इसमें ईश्वर देवता अपनी शक्तियों सहित विद्यमान है । इसे ईश्वर-धाम भी कहते हैं ।

आकाश तत्व का आवरण वायु तत्व के आवरण से दस गुना व्यापक है। शब्द गुण से भरा है । पचास खरब योजन विस्तृत है। अधिष्ठाता देव सदाशिव हैं। इनके उपासक एवं शून्य में समाधि लगाने वाले योगीजन के प्राप्त होने का स्थान है । घटाकाश, मठाकाश के सिद्धान्त को मानकर सदाशिव का ध्यान करने वाले यहाँ पर कल्पान्त निवास करते हैं । इस तत्त्व के लय होने पर ये योगीजन महाशून्य को प्राप्त होते हैं और जीव की उपाधि समाप्त हो जाती है ।

मन का आवरण आकाश से दस गुना है। इस मन तत्व अर्थात तामस अहंकार के आवरण में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उठा करती हैं । इसके अज्ञान रूप, इच्छा, शक्ति, तम रूप आदि नाम हैं । यहाँ अनन्त सूर्यों का प्रकाश है । अन्तर में फिर भी घोर अन्धकार है । तमाम लोग इसको ईश्वर मानकर भजन करते हैं ।

बुद्धि का आवरण मन के आवरण से दस गुना है। यह पचास नील योजन विस्तृत है । इसे राजस अहंकार भी कहते हैं । इसमें माया के चित्र विचित्र प्रतिक्षण उठा करते हैं । अनेक विचित्र रचनाओं का आभास जैसा प्रतीत होता है । यह बुद्धि का भण्डार क्षेत्र है । इसकी सिद्धियाँ भी विचित्र हैं । सम्पूर्ण विश्व बुद्धि से कार्य लेता है और बुद्धि की ही प्रतिष्ठा है अतः कुछ लोग 'बुद्धि ही ब्रह्म है', ऐसा मान कर उसे परमात्मा समझ कर भजते हैं ।

अहङ्कार का आवरण बुद्धि के आवरण को घेरे हुए है और उससे १० गुना है। इसका विस्तार ५ पदम योजन है । इसी को सात्विक अहङ्कार कहते हैं । शेष नारायण, लक्ष्मी जी, विष्णु इसी के प्रतीक रूप हैं । शुद्ध सत्व गुण धारण किये हैं। यह धूम्र वर्ण है । इसमें अनेक विचित्र रचनाओं की सृष्टि है । इन रचनाओं का साक्षात्कार केवल योगी पुरुष कर सकते हैं, हम इन्हें नहीं देख सकते ।

ज्योति-स्वरूप

अष्टावरण वाले ब्रह्माण्ड से ऊपर व्यष्टि प्रणव (ज्योति स्वरूप) का स्थान है। इसके मण्डल का विस्तार एक अरब योजन माना गया है। दस लाख योजन में तो अपनी रोधिनी शक्ति युक्त यह शिवलिङ्गाकार ज्योति स्वरूप स्वयं अवस्थित है। इसमें अनेक शक्तियाँ निवास करती हैं जिन्हें वेदों की माता कहा जाता है। विविध ग्रन्थों में इस ज्योति स्वरूप को अहङ्कार, पंचमुखी-शिव, ज्योतिर्लिङ्ग, शब्द-ब्रह्म, प्रणवाक्षर, मृत्युञ्जय, घट-घट वासी, रमेतीति राम, व्यापक-ब्रह्म, ईश्वर, ज्योतिस्वरूप, रोधिनी शक्ति आदि नामों से कहा गया है।

वास्तविक ज्योति स्वरूप का स्थान तो वह है जो असंख्य ब्रह्माण्डों की ज्योति-समस्त जीवों की चेतन समष्टि का उद्गम स्रोत—जड़ चेतन की गाँठि का मूल कारण है। वहीं से जीवों सहित असंख्य विश्वों का उदय तथा लय होता है। इसका स्थान आदि नारायण से भी परे है और वहीं गायत्री का वास्तविक स्वरूप भी है। परन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्ड के लिए जो जीव भेजे जाते हैं वे अपने ब्रह्माण्ड के साथ संगठित इस व्यष्टि ज्योति स्वरूप ब्रह्म के द्वारा ही जाया करते हैं, अतः इसे भी ज्योति स्वरूप के नाम से पुकारा जाता है। यह उसी प्रकार हुआ जैसे कि बिजली पैदा करने वाले बिजलीघर होते कहीं हैं पर स्थानीय स्तर पर विद्युत शक्ति को सम्पन्न कर आगे बढ़ाने वाले स्थान को भी बिजलीघर ही कहा करते हैं। वास्तविक ज्योति स्वरूप के स्थान को 'मूल प्रणव-ब्रह्म' भी कहते हैं। वहीं से असंख्य जीवों की उत्पत्ति निष्पत्ति होती है। अपने ब्रह्माण्ड में जीवों को चेतना शक्ति प्रदान करना उस ब्रह्माण्ड के साथ संगठित व्यष्टि ज्योति-स्वरूप का काम है।

विश्व के जीवों की चेतन शक्ति का शासक होने के नाते इस व्यष्टि प्रणव को ईश्वर भी कहा गया है। इस प्रणव के स्वरूप में अकार से विष्णु, उकार से ब्रह्म, मकार से शिव, बिन्दु से अष्टावरण युक्त विराट और नाद से प्रणवाक्षर माने गये हैं। इसी ज्योति के सभी के हृदय से व्यापक होकर जीव को शक्ति प्रदान करने के नाते यद्यपि इसे ईश्वर कहना उचित है तथापि वास्तविक ईश्वर तो नारायण महाविष्णु हैं, क्योंकि माया के द्वारा उत्पन्न जीव की उपाधि वहीं से प्राप्त होती है।

गायत्री शक्ति

ज्योति स्वरूप से जीव रूप चेतन तथा व्यापक चेतन जड़ के साथ मिलकर विश्व में उतरता है, अतः इसे जड़ चेतन की गाँठि कहते हैं। गायत्री नामक शक्ति इस गुणात्मक प्रणव से परे और निर्मल है। गायत्री द्वारा वेदों का ज्ञान उतरता है, गुणात्मक विश्व नहीं उतरता इसीलिए इसका स्थान व्यष्टि ज्योति स्वरूप मण्डल का निर्मल चेतन माना गया है। गायत्री का वाहन मोर तथा किन्हीं लोगों के मत में हंस है। इसका धाम मन्दिर छत्र सिंहासन स्वरूप, आभूषण शोभा शृंगार आदि कपूर के समान श्वेत गौर वर्ण है। यह अनन्त शोभा, अनन्त ज्ञान और जीवों का भण्डार है। इसके अन्दर गोलोक की (बृज-गोकुल की रास) लीला का अव्याकृतस्थ गोलोक की लीला द्वारा प्रतिभास प्रतीत होता है।

महत्तत्व

आदि पुरुष के सूक्ष्म शरीर को महत्तत्व कहा गया है। अव्याकृत के सूक्ष्म विद्या-पाद में स्थित काल-निरंजन पुरुष यहाँ प्रतिबिम्बित होकर अधिभूत, अध्यात्म तथा अधिदेव रूप से तीन प्रकार का हो जाता है। महत्तत्व में जितनी भी लीला वैचित्र्य हैं वह सब काल निरंजन पुरुष का प्रतिबिम्ब-रूपान्तर ही है।

अधिभूत के असत् जड़ और दुःख तीन स्वभाव हैं। ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति इसके साथ हैं। क्रिया शक्ति को ब्रह्माणी शक्ति भी कहते हैं और ज्ञान शक्ति को गायत्री शक्ति भी कहते हैं। दस महाविद्या और २४ हजार अन्य शक्तियाँ भी इसके साथ हैं। वास्तव में इसी अधिभूत का नाम महत्तत्व है। इसमें दो पुरुष और हैं एक है अध्यात्म और दूसरा अधिदैव।

अध्यात्म के इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीन स्वभाव हैं। सुमना नामक शक्ति के साथ २४ हजार अन्य शक्तियाँ हैं जो संकेत मात्र से अनेकों कार्य सम्पादित करने में सक्षम हैं।

अधिदैव के काल, विक्षेप और आवरण तीन स्वभाव हैं और विज्ञान (ब्रह्म विद्या) नाम की शक्ति है। २४ हजार अन्य शक्तियों का भी समूह इसके साथ है।

स्थूल विराट में जो चीज स्थूल रूप से विद्यमान हैं वे सभी इस महत्तत्व में सूक्ष्म रूप से अवस्थित हैं। इस महत्तत्व को विभिन्न ग्रन्थों में अचिन्त्य-पुरुष, नींद स्वरूप, महद्ब्रह्म, महानाद, ब्रह्म शिव, महातम, निर्विशेष, निरंजन, मोहतत्व, शून्य, निर्गुण, निराकार आदि नामों से कहा गया है।

सात शून्य महत्तत्व से परे **आदि-पुरुष का कारण स्वरूप** 'इच्छा-शक्ति' नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण स्वरूप में ७ महाशून्य प्रतिबिम्बित हैं और इनका विस्तार एक-एक खरब योजन है। इससे अनन्त राग, तान, मीठे स्वर उठा करते हैं। इनकी ५ अधिष्ठात्री प्रबल शक्तियाँ हैं—वास्तवी, अनिर्वचनीया, तुच्छा, शिव-कल्याणी और उन्मुनी। सबसे अधिक शक्तिशाली उन्मुनी शक्ति है। यह महात्माओं को भी वश में किये रहती है। यह आदि नारायण की सत्ता का उपभोग करती है और सबका मूल कारण है। इसे शास्त्रों में शून्य, प्रकृति, माया ब्रह्म, प्रकाश स्वरूप, विज्ञान स्वरूप, पुरुष, ईश्वर, आत्मा, इच्छाशक्ति, विश्वकारण आदि नामों से कहा गया है। इन शून्यों में योगियों का अनहद (अनाहत) ध्वनियों का सुख भी प्राप्त होता है। इन्हीं शून्यों से सात स्वरूपों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गायत्री, ज्योतिस्वरूप, इन्द्र और धर्मराज को सब कुछ प्राप्त होता है।

आदि पुरुष का महा कारण स्वरूप—महाशून्य समष्टि

आदि पुरुष (महाविष्णु) चार स्वरूपों में विभक्त है। जाग्रदवस्था में विराट तथा ज्योति स्वरूप है। स्वप्नावस्था (सूक्ष्म) में महत्तत्व है। सुषुप्ति अवस्था इच्छा शक्ति है। इन तीनों से पर तुरीय स्वरूप है।

महाविष्णु के चारों ओर अनन्त, अपार, विस्तृत शून्य समष्टि है। शेषशायी नारायण (पाताल) से लेकर आदि पुरुष तक जितने स्वरूप हैं, तथा विश्व के जितने भी जीव हैं, वे सब इसी महाकारण स्वरूप में लय हो जाते हैं। अनेक असंख्य वस्तुओं का जिसमें लय होता है उसे समष्टि कहते हैं। अनेक ब्रह्माण्डों के असंख्य व्यापक आकाशों

का लय इस परमाकाश में होता है। अतः इसे शून्य समष्टि कहते हैं। शास्त्रों में इसे कारण प्रकृति, महामाया, शब्द ब्रह्म, मोहनिद्रा, कारण, अव्याकृत, व्यापक विष्णु, परमाकाश, महाविष्णु आदि नामों से कहा गया है।

महाशून्य समष्टि को विष्णु व्यापक स्वरूप, सत् प्रकृति, भगवान् की अपरा प्रकृति का कारण स्वरूप भी कहा जा सकता है। कुछ लोग इसे व्यापक ब्रह्म भी कहते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय के समय घर के दरवाजे अथवा खिड़की से असंख्य सूर्य-किरणों के त्रसरेणु प्रतीत होते हैं उसी प्रकार परमाकाश स्वरूप से असंख्य ब्रह्माण्ड त्रसरेणु रूप में घूमते रहते हैं और समुद्र की तरंगों के समान उठ-उठ कर अपने इसी स्वरूप में रजकण के समान हवा में उड़-उड़कर उसमें विलीन होते रहते हैं। उसी प्रकार परमाकाश (महाशून्य) में अनेकानेक विश्वों का उदय और लय होता रहता है। जब यह महाशून्य अपने अव्यक्त स्वरूप में और अव्यक्त जब परस्वरूप में लय को प्राप्त होता है तब असंख्य ब्रह्माण्डों का लय हो जाता है और इसे महाप्रलय कहते हैं।

अक्षर पुरुष (अक्षर-ब्रह्म)

अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत पर ब्रह्म की सत्ता का अंग मात्र है और अक्षरातीत ब्रह्म का अंग होने से सापेक्ष और न्यून है। वस्तुतः अंग स्वरूप और अंगी का भेद नहीं होता, पर अक्षर ब्रह्म और पूर्ण ब्रह्म (अक्षरातीत) के बीच यह भेद लीला-मात्र है। जो तत्वदर्शी पुरुष अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानकर मृत्यु लोक से जाते हैं, वे ब्राह्मण हैं और वही ब्रह्मधाम को प्राप्त होते हैं।

अक्षर ब्रह्म के स्वरूप में असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय लय प्रतिक्षण होता है, अतः ब्रह्मानन्द लीला रस का उदय नहीं हो पाता। अक्षरातीत ब्रह्म माया रहित और सच्चिदानन्द स्वरूप है अतः उसके स्वरूप में सृष्टि का उदय नहीं होता। इसीलिए अवर (अक्षर) ब्रह्म और पर ब्रह्म (अक्षरातीत) के स्वरूपों का पृथक-पृथक वर्णन है। मुण्डकोपनिषद् में पर ब्रह्म को 'अक्षरात् परतः परः' और श्रीमद्भगवद्गीता में 'उतमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः' कहा गया है। परब्रह्म ही एक सनातन पूर्ण ब्रह्म है।

समस्त अध्यस्त[६] देवों (महाविष्णु, ब्रह्मा, शिवादि) अथवा असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय-लय अक्षर ब्रह्म द्वारा होता है। अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति (सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, अव्याकृत) के अन्तर्गत ही मुक्तात्माओं के मुक्ति-स्थान हैं। अक्षरातीत परब्रह्म के परम धाम को तो कोई महान पुरुष (ब्रह्म मुनि), जो वहीं से यहाँ आये हैं प्राप्त कर पाते हैं। ब्रह्म मुनियों की कृपा से भी ब्रह्मानन्द प्राप्ति सम्भव है। शेष जीवों की परमगति चतुष्पाद विभूति के अन्तर्गत ही है क्योंकि सामान्यतया जो जिसका अंश है वह उसी को प्राप्त होता है ('यो यदंशः स तं भजेत्')।

जैसे प्रज्वलित अग्नि में से समान रूप वाले हजारों विस्फुलिङ्ग (चिनगारी) उठा करते हैं, वैसे ही अक्षर ब्रह्म से विविध भाव (असंख्य ब्रह्माण्ड) उत्पन्न होते रहते हैं और उसी में विलीन होते रहते हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने अन्दर निहित सूक्ष्म तन्तु को बाहर फैला भी देती है और समेट भी लेती है, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म अपने

---

६ वह जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो, जैसे रस्सी में साँप का।

स्वरूप में अवस्थित अव्याकृत स्वरूप (चतुर्थ विभूतिपाद) द्वारा अनन्त विश्वों को रच भी देता है और फिर अपने (अव्याकृत) स्वरूप में समेट भी लेता है।

सृष्टि के पूर्व सत, असत्, परमाणु, सूक्ष्माकाश, मृत्यु, अमृत, जल, वायु, रात्रि, दिवस नहीं थे। किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं था, निराकार-साकार, जड़-प्रकृति कुछ नहीं था। अचेतन प्रकृति बिना अध्यक्ष (अक्षर ब्रह्म) को इच्छा के विश्व रचना तो सोच भी नहीं सकती जैसे कागज पेन्सिल बिना कर्ता के चित्र नहीं बना पाते।

विश्व की रचना स्वप्न के समान मानी गयी है। जैसे एक ही मन चेतन और जड़ रूप में अनेक प्रकार से प्रतीत होता है, उसी प्रकार भगवान् अपनी शक्ति से जड़ चेतन दोनों स्वरूपों में विभक्त होकर जगत के नाना रूपों में अवस्थित प्रतीत होता है। स्थावर-जंगम, सद् असत् दिखायी पड़ने वाला संसार केवल प्रतीति मात्र है। जैसे स्वप्न देखने वाला मन दृश्य-द्रष्टा, ज्ञान-ज्ञेय रूप में स्वयं ही सब कुछ बन जाता है और स्वयं देखता भी है, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप महाविष्णु ने अपनी कल्पना से सब पदार्थों को खड़ा कर अनन्त विश्व रूप की रचना करती है और स्वयं इसे देख भी रहा है। जिस प्रकार मरीचिका (मृगतृष्णा का जल) सूर्य किरण के अलावा कुछ भी नहीं है, पर प्यासे मृग को वह जल रूप दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् अक्षर ब्रह्म के मन रूप महाविष्णु के चित्त की लीला मात्र है और माया के जीव अपने कल्पित स्वरूप को नहीं समझ पाते। स्वप्न की सृष्टि स्वप्न को नहीं समझ पाती और इसलिए जगत् का वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आता।

स्वप्न देखने वाला जड़ मन है। कल्पना भी इसी मन की है। जीव तो साक्षी मात्र है। स्वतः कल्पना सम्भव नहीं है। कल्पना की प्रेरणा तो चिदाभास से प्राप्त होती है। अक्षर ब्रह्म के मन की कल्पना का क्षेत्र चेतन है। इसकी कल्पना में जड़ चेतन का सारा विस्तार चेतन मन का है। हमारा मन केवल अन्तःकरण की वृत्ति मात्र है। अक्षर ब्रह्म का मन चतुष्पाद विभूति में स्वतन्त्र रूप से अपना अस्तित्व रखता है। हमारे स्वप्न को कल्पना निद्रा और सम्भ्रम के कारण प्रतीत होती है परन्तु अक्षर ब्रह्म के मन की कल्पना आवरण[१०] और विक्षेपा[११] दो शक्तियों के विलक्षण सामर्थ्य का परिणाम है।

कूटस्थ अक्षर-ब्रह्म के हृदयाकाश से सुमङ्गला नाम की शक्ति ने प्रकट होकर महामोह रूप निद्रा को प्रकट किया। अपने से ही उत्पन्न शैवाल (काई के ढके जल के समान मोहावरण से ढके अक्षर ब्रह्म अपने अन्दर विश्व को देखने लगे। निद्रारूप महा-मोह में पुरुष के मन ने संकल्प-विकल्प किया और नारायण रूप में प्रकट हो गया। यह नारायण पाँच पुरुषों का मूल (पंचावयव प्रणव) कहलाता है। इसी से महाशिव, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र—पाँच देवों का प्रादुर्भाव होता है।

अव्यक्त विश्वों के उद्गम के आदि स्रोत जहाँ से असंख्य विश्वों की रचना निरन्तर होती रहती है, उसे अव्याकृत कहते हैं। अव्याकृत में अक्षर ब्रह्म की प्रेरणा से सबलिक (चिदाभास) प्रतिविम्बित होकर क्षब्ध भाव को प्राप्त होता है और महत्तत्व

---

१० निद्रा बढ़ाने वाली।

११ स्वप्न को खड़ा कर देने वाली।

व्यक्त हो जाता है। महत्तत्व से अहङ्कार, अहङ्कार से ५ तन्मात्राएँ, सूक्ष्म इन्द्रिय और उनके पाँच देवों की उत्पत्ति होती है, और इस प्रकार सृष्टि का प्रवाह चल पड़ता है।

अक्षर ब्रह्म के चार पाद हैं : (१) अविद्यापाद (२) सविद्यापाद (३) आनन्दपाद (४) तुरीयपाद ।

(तुरीय-तुरीय अर्थात् महाकारण और तुरीयातीत अर्थात् निर्मल चैतन्य)

मूल अविद्या प्रथम पाद (अव्याकृत) में ही है, अन्य पादों में नहीं है। विद्यापाद में निरंजन (काल पुरुष), दश महाविद्या तथा अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव स्वभाव तथा ७२ हजार शक्तियों सहित उसके गुण निरंजन पुरुष को महा प्रबल बनाये हैं। यह असंख्य जीवों को अपने में मिला लेता है अतः असंख्य जीव इसे ब्रह्म मानकर भजते हैं और यह उनकी समष्टि बन जाता है। इसके आगे असंख्य जीवों का मोक्षधाम है जिसे आनन्द पाद, महाशून्य, अलख ब्रह्म, निर्विशेष ब्रह्म, व्यापक ब्रह्म कहते हैं। इसके आगे तुरीय पाद है जिसमें ४ द्वीप हैं। श्वेत द्वीप में पुरुष का वास है। रामोपासक इसे साकेत, कबीर मत वाले सत लोक, वैष्णव लोग परमविष्णु का धाम या 'व्यापी वैकुण्ठ' कहते हैं। इसके आगे तुरीयातीत (निर्मल चैतन्य) में प्रतिभासिकी ब्रज लीला और रास लीला का स्थान है, जिसे गोलोक कहते हैं। इसके आगे सबल ब्रह्म, केवल ब्रह्म आदि हैं।

अक्षर ब्रह्म के ३ पाद तो सर्वदा अखण्ड वर्तमान हैं। चतुर्थ पाद अव्याकृत है जिसमें असंख्य विश्वों का उदय-लय होता रहता है। विभूति का अर्थ विशेष ऐश्वर्यों का समन्वय होता है। अव्याकृत को माया और ब्रह्म दोनों भाव वाला माना गया है। मायाभाव में सृष्टि है तथा ब्रह्म भाव में मोक्ष है।

प्रणव ब्रह्म—शून्य समष्टि अथवा क्षर समष्टि से परे अव्याकृत के चतुर्थ पाद—स्थूल स्वरूप में इसका स्थान है। इसे प्रणव ब्रह्म ओंकार का धाम भी कहते हैं। यह अहंकार स्वरूप है। ५ मुख १० भुजाओं से युक्त सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान अनुपम शोभा को धारण किये है। इसको 'ओमित्यक्षर' भी कहते हैं। यहीं से प्रत्येक विश्व के लिए जीवों को प्रदान किया जाता है। प्रत्येक विश्व के प्रलय के पश्चात भी जीवों के एकत्रित होने का प्रधान केन्द्र भी यही है। अनन्त जीवों को पैदा करके पुनः अपने में समेट लेना इस ब्रह्म की सामर्थ्य है। इसके मन की शक्ति का नाम रोधिनी शक्ति है जो प्रणव की इच्छा के अनुसार असंख्य जीवों की रचना करके विश्वों को उत्पन्न और लय किया करते हैं। यह शक्ति सुमंगला शक्ति की प्रतिनिधि स्वरूप है और इसे मूल प्रकृति भी कहते हैं। इसमें व्यक्त (साकार) और अव्यक्त (निराकार) दोनों भाव विद्यमान हैं। जब व्यक्त भाव का उदय होता है तब विश्वों की रचना होती है और जब अव्यक्त उदय रहता है तब प्रलय रहती है। प्रणव से उत्पन्न होने वाले जीवों को यह शक्ति आगे नहीं जाने देती। अतः इसे रोधिनी शक्ति कहते हैं। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले जीव अपने मूल का कैसे उल्लंघन कर पाते, अतः माया में फँस जाते हैं। प्रणव ब्रह्म को चार पाद और १६ मात्रा युक्त कहा गया है। यह १६ मात्राएँ १६ कलाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि यहाँ प्रणव का आधिपत्य है तथापि ज्ञान की विशेषता के कारण इसे गायत्री शक्ति का धाम कहते हैं। इस धाम की परदेवता गायत्री शक्ति को माना गया है। इसे निरक्षर-ब्रह्म भी कहा गया है।

काल निरंजन—प्रणव ब्रह्म तथा गायत्री से परे सूक्ष्म (विद्यापाद) में काल निरंजन का स्थान है। शास्त्रों में इसे निरंजन पुरुष, काल-निरंजन, काल-भगवान, निरंजन शक्ति, अचिन्त्य पुरुष, महाकाल, महारुद्र, महत्तत्व आदि नामों से कहा गया है। इस काल निरंजन पुरुष के अन्तर्गत जगत को रचने की शक्ति है और इसी के अन्तर्गत सबसे ज्येष्ठ हिरण्यगर्भ नामक आदि पुरुष भी वर्तमान है। इस काल पुरुष के अन्तर में सांग वेदों का बीज है। यह जगत पिता ब्रह्मा का जनक भी है।

अध्यात्म के साथ इच्छा, ज्ञान, क्रिया गुण और २४ हजार शक्ति युक्त सुमना शक्ति, अधिदैव के साथ काल, विक्षेप और आवरण गुण तथा २४ हजार शक्ति युक्त विद्या तथा ब्रह्म विद्या नाम की २ शक्तियाँ और अधिभूत के साथ असत्, जड़ और दुख भाव और २४ हजार शक्ति युक्त दश महाविद्या नाम की शक्ति विद्यमान है। इस प्रकार ७२ हजार शक्तियों सहित यह काल निरंजन पुरुष खड़ा है। संसार की महाकाली भवानी आदि जितनी देवियाँ हैं, वे सब इसी की विस्तार हैं। यह विश्व के असंख्य जीवों का प्राण भक्षण करने वाला है। महत्तत्व इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप है। इसके विशाल धाम में बृज, रास आदि अनेक लीलाओं का प्रतिभास विद्यमान है। इसके ऊपर के ७ शून्य एक प्रकार से इसी के विस्तार हैं। यह अनेक विद्या और विभूतियों का भण्डार है।

सात महाशून्य

काल निरंजन से परे अव्याकृत के तृतीय पाद-कारण में, सात महाशून्यों का विस्तार है। यह सातों शून्य ७ रंग के हैं। यह कई खरब विस्तार वाला माना गया है। यहाँ पर वास्तवी, अनिर्वचनीया, तुच्छा, शिव-कल्याणी और उन्मुनी—ये पाँच शक्तियाँ अधिष्ठात्री रूप से विराजमान हैं। प्रत्येक शून्य में असंख्य शक्तियों का निवास है। इन सातों शून्यों में अनेक प्रकार के स्वर उठा करते हैं। इनको माया और ब्रह्म दोनों नाम से लिखा है। यह कारण रूप से माया है और चेतन रूप से ब्रह्म कहे जाते हैं।

सृष्टि के कार्य में किसी प्रकार से प्रेरणा देने वाली को 'प्रकृति' शब्द से कहा गया है। अतः ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नारायण, प्रणव, ब्रह्म, काल निरंजन आदि सबके पश्चात प्रकृति नाम से कही जाने वाली शक्तियाँ विद्यमान हैं। अक्षर ब्रह्म (विभूति ब्रह्म) की पराप्रकृति व्यक्ता (जड़) रूप से जगत का कार्य करती है और अव्यक्ता (चेतन) स्वरूप से अनन्त पुरुषों को सुख प्रदान करती है। सांख्य तत्व के ज्ञाता और बड़े-बड़े योगी पुरुष यहीं आकर मुक्ति-सुख प्राप्त करते हैं। यहाँ पर पाँचों शक्तियों का आधिपत्य है परन्तु सबसे प्रधान उन्मुनी शक्ति है। यह सब प्रपंचों का मूल गिनी जाती है। इसका नाम शून्य मण्डल भी है इसीलिए इस पद को पाने के लिए योगी-जन शून्य समाधि लगाया करते हैं। अव्याकृत का यह कारण स्वरूप अनन्त ऐश्वर्यों और अनन्त सुखों का धाम है। विश्व के ऋषि, महर्षि, पैगम्बर एवं निर्लेप योगी पुरुषों की मुक्ति का यह स्थान है। इसे सातवीं मुक्ति बताया गया है। योग माया और काल माया का यहीं प्रधान स्थान है। परन्तु जिस योग माया ने रास मण्डल रचाया वह केवल ब्रह्म के धाम में है। यहाँ से आवागमन होता है।

अव्याकृत का महाकारण

सात महाशून्यों से परे अव्याकृत का महाकारण स्वरूप है इसे सबलिक ब्रह्म का स्थूल स्वरूप भी कहा जाता है। इस महाकारण में सत् स्वरूप की लीला का प्रतिभास

है। वहाँ पर स्थूल पदार्थ नहीं हैं। इसे नित्य बैकुण्ठ, सतलोक, अमरलोक, अचिन्त्य पुरुष का धाम, श्वेत द्वीप, साकेत आदि नामों से कहते हैं। यहाँ पर चार द्वीप हैं, जिनमें मुक्तात्मा निर्मल स्वरूप होकर निवास करती हैं। इसे योगी जन 'हंस' कह कर पुकारते है तथा वैष्णव जन 'मुक्तात्मा' कहते हैं। राम के उपासक अपने इष्ट के धाम को साकेत धाम, अखण्ड अयोध्या; कबीर मत के सन्त सत्लोक को अमर लोक, अचिन्त्य पुरुष का धाम, हंस-लोक, अलख-पुरुष धाम, आदि पुरुष का धाम, निर्गुण लोक और वैष्णव जन बैकुण्ठ धाम, श्वेत द्वीप, पुष्कर द्वीप, विष्णु लोक आदि नामों से पुकारते हैं। वैष्णव सत्लोक को अन्य द्वीपों की अपेक्षा अग्रगण्य मानते हैं।

विष्णु का एक रूप बैकुण्ठ में है, दूसरा नारायण है और तीसरा अव्याकृत के महा-कारण में है। इसके आगे विष्णु की लीला नहीं है। सुमंगला नाम की शक्ति इसी श्वेत द्वीप निवासी विष्णु को अनुरूप पाकर मोह रूप निद्रा को प्रकट करती है और इस पुरुष को विक्षेप और आवरण में प्रतिबिम्बित कर अनन्त विश्वों का कारण बना देती है। यह चारों द्वीप माया से परे बताये गये हैं। जो विष्णु भक्त अथवा राम की उपासना करने वाले अपने इष्ट को निष्काम भाव से भजते हैं वह नश्वर बैकुण्ठ आदि पुरुष के धाम आदि के नष्ट हो जाने पर नित्य विष्णु के पद को प्राप्त होते हैं।

श्वेत द्वीप में नारद जी का भी आना जाना लिखा है तथा उनका लौटना भी वर्णित है। श्वेत द्वीप में ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, शेष, दैत्य, दानव आदि सभी की उपस्थिति का उल्लेख है। अतः स्पष्ट है कि श्वेत द्वीप अखण्ड नहीं है और इसीलिए आवागमन रहित भी नहीं है।

अव्याकृत में स्थित गोलोक

उपर्युक्त नित्य बैकुण्ठ के ५० करोड़ योजन ऊपर अव्याकृत के इसी महाकारण में गोलोक धाम है। इसे नित्य गोलोक का प्रतिभास कहते हैं। वहाँ पर नित्य गोलोक की प्रतिभासिकी लीला है और यह अखण्ड कहा गया है। यहाँ पर नन्द, यशोदा, गोपी, ग्वाल-बाल, वन-उपवन, यमुना, गोवर्धन पर्वत आदि सब विद्यमान हैं। जिन गोपियों को ऊधव जी ने ज्ञान का उपदेश दिया था, वे इसी लीला धाम को प्राप्त होती हैं। श्री कृष्ण के बाल स्वरूप को सेव्य मानकर उन्हें भेजने वाले इसी गोलोक को प्राप्त होते हैं। इस बृज लीला का आनन्द बैकुण्ठ के आनन्द से बहुत अधिक है। भगवान विष्णु इसी का ध्यान किया करते थे। प्रतिक्षण ब्रह्मानन्द का अनुभव कराने वाली प्रतिभासिकी लीला के नाते इसे नित्य कहा गया है।

अव्याकृत के निर्मल चैतन्य में रास लीला

अव्याकृत के तुरीय पाद में ब्रज लीला और रास लीला दोनों अखण्ड वर्तमान हैं। इसीलिए इन दोनों को नित्य गोलोक और नित्य वन्दावन की लीला भी कहते हैं, परन्तु यह प्रतिभासिकी लीला ही है।

सबलिक में चिदानन्द लहरी—अव्याकृत-प्रकृति पुरुष से पर सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म पाद-स्थान में इस चिदानन्द लहरी का स्थान है, जो शिवाकार मंच पर मणि द्वीप के मध्य में विराजमान है। सबलिक ब्रह्म का चिदंश और आनन्दांश की एकता चिदानन्द लहरी का स्वरूप है। उपरोक्त दोनों अंशों का जो घनीभूत भाव है उसी को चिदानन्द लहरी कहते हैं। इसे **सुमंगला शक्ति** भी कहते हैं। यह सर्वोपरि इच्छा शक्ति

का स्वरूप है। इस सुमंगला शक्ति के इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है। मोहरूपी निद्रा को उत्पन्न कर विश्व के नाटक को व्यक्त करने वाली इसी शक्ति को **मूल प्रकृति** भी कहते हैं और सभी का इसी में लय होने के कारण यह अव्याकृत भी कही गयी है। सद्रूपा माया (सुमंगला का अव्यक्त रूप) ही अव्याकृत है।

सुमंगला ने अपनी इच्छा से अव्याकृत में (अव्यक्त रूप चिदाकाश) विकसित देखना चाहा। शून्य मण्डल में ५ शक्तियों वाले योग माया को यह व्यवस्था सौंपी गयी। योग माया की प्रेरणा मात्र से महामाया (रोधिनी शक्ति) ने अपने हो विश्व को व्यक्त रूप दे दिया अर्थात् स्वयं विश्व रूप वन गया। जब व्यक्त विश्व स्थूल की ओर बढ़ा तो आगे का कार्य माया को सौंप दिया गया। माया गुणात्मिका सृष्टि की व्यवस्था करने लगी। काल निरंजन ने विश्व के कार्य में निरीक्षक (सुपरवाइजर) का कार्य किया। जो कार्य उचित नहीं लगा उसे काल निरंजन को शक्ति ने नष्ट कर दिया।

नित्य गोलोक

सबलिक ब्रह्म के कारण स्वरूप में नित्य गोलोक धाम आता है। यह चिदानन्द लहरी से परे है और नित्य, चेतन, शोभायमान है। इसमें साढ़े तीन करोड़ और किसी के मत से इससे भी अधिक सखी समुदाय के साथ श्री राधा-कृष्ण जी विहार करते हैं। यहाँ असंख्य ग्वाल बाल आदि हैं। इसी के द्वारा अव्याकृत में तथा आदि पुरुष के महा-कारण में तथा इस विश्व में कृष्ण लीला उतरा करती है। इसी का प्रतिभास अव्याकृत में भी गोलोक कहा गया है। श्री कृष्ण की प्राण-वल्लभा राधिका जी प्रकृति स्वरूपा हैं, जिनके अंश में असंख्य त्रिगुणात्मिका दुर्गा, काली, लक्ष्मी आदि शक्तियाँ विश्व में दिखायी पड़ती हैं। इस गोलोक धाम में श्री कृष्णजी मुरली हाथ में लिये हुए दो भुजाओं के स्वरूप में किशोरावस्था में इच्छामय रूप से विराजमान हैं। प्रकृति-अव्याकृत से पर श्रीकृष्ण के इस ब्रह्म-मय स्वरूप को ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवतागण और महर्षिगण नमन किया करते हैं। फिर भी जान नहीं पाते। इसको ब्रज की पाँचवीं मुक्ति कहते हैं जो जीव तारतम्य के द्वारा इसको धारण कर चितवन करेंगे, वे अन्त में इसी पद को प्राप्त होंगे।

सबल-ब्रह्म का महाकारण

नित्य गोलोक से पर सबलिक का यह नित्य वृन्दावन स्वरूप महाकारण स्थान है, जिसमें अखण्ड महारास विद्यमान है। अक्षरातीत श्रीकृष्ण परमात्मा ने केवल-ब्रह्म द्वारा अक्षर ब्रह्म से ब्रह्मानन्द रस का जो अनुभव कराया था, उसे अक्षर ब्रह्म ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा सबल वृत्ति के अन्तःकरण में धारण कर लिया। अतः वह सबल-ब्रह्म में महाकारण में अखण्ड वर्तमान है। केवल धाम की लीला में अल्प मात्रा में आनन्द का उदय होता है परन्तु इसमें तो सदा ही पूर्ण ब्रह्मानन्द उदित है। पूर्ण ब्रह्म के आवेश द्वारा जो रास रचा गया था, वह अक्षर-ब्रह्म की इच्छा पूर्ण करने के लिए था। सुमङ्गला के अन्तर्गत ही माया खेल रच सकती है। उससे परे न तो खेल का अस्तित्व है न निद्रा का।

केवल धाम तो परम धाम का प्रतिबिम्ब स्वरूप है। वहाँ तो नव रस उदित ही हैं। अतः सबलिक ब्रह्म के महाकारण में ही अखण्ड रासलोला का स्थान है।

सबल ब्रह्म का निर्मल चेतन—चतुष्पाद विभूति के चतुर्थ पाद के तुरीयातीत भाव को ही निर्मल चैतन्य कहा जाता है। यहीं चिद्रूपाक्षर (सबलिक) का मुख्य धाम है। यहाँ पर यह अपनी अनन्त शक्तियों सहित विराजमान है। लक्ष्मी जी युक्त बाल स्वरूप अवस्था है। असंख्य बाल स्वरूपा शक्तियाँ परिचारिकाओं के रूप में विद्यमान हैं। यह अक्षर-ब्रह्म के चिदंश का कोटिमाँ भाग का स्वरूप है। जैसे अक्षर-ब्रह्म परमधाम में परब्रह्म के दर्शन को जाते हैं वैसे ही यह सबलिक ब्रह्म केवल धाम में केवल ब्रह्म के दर्शन हेतु जाते हैं। श्रीकृष्ण के तीसरे स्वरूप द्वारा जीवों को दी मुक्ति का यही स्थान है।

श्रीकृष्ण की ब्रज, रास और जागनी—तीन प्रकार की लीलाएँ कही गयी हैं। ब्रज में बाल स्वरूप, रास में किशोरस्वरूप, तीसरे इण्ड में निजानन्द प्रभु के रूप में यह लीला है। तीनों अवस्थाओं की इस प्रकार की तीन लीलाएँ हैं। जो सुन्दर साथ धर्म को ग्रहण कर सेवा-भाव ग्रहण न कर पायेंगे और सामान्य जीवन व्यतीत करेंगे, वे चौरासी लाख योनियों में न जाकर श्रीकृष्ण के तीसरे 'श्याम' स्वरूप के अधिष्ठान इसी सबलिक के निमल चैतन्य में तीसरी मुक्ति प्राप्त करेंगे।

केवलधाम—सबलिक के निर्मल चैतन्य से नौ लाख कोस पर केवल ब्रह्म का धाम है। दोनों एक ही भूमिका में हैं। दोनों धामों के बीच यमुना जी हैं। इसके दोनों किनारों पर सात वन और रत्न जड़े हुए सात घाट शोभित हैं। केवल धाम से पूर्व यमुना जी और यमुना जी से पूर्व सबलिक ब्रह्म का धाम है। चौंसठ स्तम्भों के एक अद्भुत स्वर्णखचित सिंहासन पर अपनी स्वामिनी शक्ति सहित केवल ब्रह्म विराजमान हैं। केवल ब्रह्म और उनकी आनन्दमाया किशोर अवस्था में माने गये हैं। केवल रस रूप ब्रह्म होने से इन्हें केवल ब्रह्म कहा जाता है। द्रवीभूत और घनीभूत दोनों भावों में रस रूप ब्रह्म ही सर्वत्र ओतप्रोत है। केवल धाम के सभी पदार्थ आनन्द रूप हैं। यहाँ पर पूर्ण ब्रह्म का पूर्ण आनन्द ही प्रतिभासित है। यह केवल धाम अनन्त शोभा युक्त दिव्य स्वरूप अखण्ड स्थित है।

सत्स्वरूप—केवल धाम से पर चतुष्पाद विभूति का तुरीयपाद है और इसे सत्स्वरूप कहते हैं। सत्स्वरूप में सदंश, चिदंश और आनन्दांश तीनों विद्यमान हैं। इसी को अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप अक्षर भगवान्, सत्स्वरूप आदि नामों से पुकारते हैं। व्याप्य भाव से यह अपने स्वरूप में उदीयमान है और व्यापक भाव से चारों विभूतिपादों में प्रकाशित है। सत्स्वरूप के महाकारण में कुमारिकाओं को मुक्ति स्थान मिला है और निर्मल चैतन्य में ब्रह्मसृष्टि के अधिष्ठान स्वरूप उत्तम जीवों को मोक्ष प्राप्त होता है।

ब्रजलीला के समय जिन कन्याओं ने कात्यायनी व्रत धारण कर श्रीकृष्ण को पति रूप में चुना था और जिनके वस्त्र श्रीकृष्ण ने हरण किये थे, उन्हें कुमारिकाएँ कहा गया है। उन्हें प्राप्त मुक्ति के स्थान को दूसरी मुक्ति (स्थान) कहते हैं। तारतम्य ज्ञान प्राप्त कर कुमारिकाओं के समान पूर्णब्रह्म को भजने वाले इस मुक्ति स्थान को पायेंगे। इसी धाम को बुध जी का स्थान बताया गया है और बुध जी आज भी विश्व के जीवों को जाग्रत कर यहाँ लाने की कोशिश कर रहे हैं।

सत्स्वरूप का निर्मल चैतन्य—सत्स्वरूप के महाकारण (तुरीय-तुरीय) से परे यह तुरीयातीत स्थान है। इसे ब्रह्म-सृष्टि की मुक्ति बताते हैं। पूर्ण ब्रह्मस्वरूप ने परम-धाम सत्स्वरूप के अन्तर्गत इसके निर्मल चैतन्य में होकर खेल (प्रपंच रूप) दिखाया है।

अतः खेल (प्रपंच रूप) में आने वाली ब्रह्म-सृष्टियों के स्वरूप का चेतन परमधाम का न होकर सत्स्वरूप का चेतन है। जिस चेतन का संग मिथ्या जीवों को प्राप्त हुआ है, उसी चेतन के धाम को वह प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार माया के जीव भी ब्रह्मसृष्टि की इस मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। ब्रह्मसृष्टि का 'परात्म' चेतन परमधाम से कहीं नहीं गया अपितु वहीं मूल मिलावा में रहा।

अक्षर-ब्रह्म के मन के 'मैं अकेला ही बहुत रूप हो जाऊँ' विचार और विश्व-प्रवेश तक के बीच की सृष्टि को ईश्वरी सृष्टि कहते हैं, चाहे वह गोलोक की हो या अक्षरधाम की। नारायण के इस विराट स्वरूप में कुछ जीव उनको स्वप्नवृत्ति से प्रतीत होने लगते हैं, उन्हें जीव कहते हैं।

गोलोक से कृष्ण लीला के साथ अनेक गोप-गोपियों को आना पड़ा था। प्रणव धाम से भी जीव आया करते हैं। मुक्त जीव भी अन्य जीवों पर कृपा करने के लिए आया करते हैं, यद्यपि उनके कर्म शेष नहीं रहते। शून्य मण्डल से भी मुक्त जीव आते हैं और अनेक जीवों का उद्धार कर मुक्त पद को वापस चले जाते हैं। तारतम्य ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त सभी प्रकार का आवागमन मिट जाता है।

परम पुरुष (परब्रह्म-स्वरूप तथा परमधाम)

अक्षर ब्रह्म से परे सर्वातीत सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा है। उसके निजस्वरूप का रहस्य तथा सुदिव्य शोभा से परिपूर्ण स्वयंसिद्ध प्रकाश स्वरूप धाम पर ब्रह्मधाम, दिव्य ब्रह्मपुर तथा परमधाम आदि नामों से कहा गया है। अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा पूर्णात्पूर्ण, परात्पर, सच्चिदानन्द-स्वरूप, अनन्ताऽद्वैत, सदा-सर्वदा चेतन, दिव्य प्रकाश पुञ्ज, अनन्तधर्माविछिन्न, एकरस, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाध्यक्ष, सर्वाश्रय, स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष विराजमान है। उसका परम धाम भी सदा-सर्वदा एकरस, स्वयंसिद्ध, दिव्य-शोभा पूर्ण, नित्य-चेतन, सनातन, सर्व सामग्री सम्पन्न, सभी प्रकार के आनन्दों से परि-पूर्ण चिदघन स्वरूप में अवस्थित है और वहाँ कोई विकार नहीं है।

परम धाम सत्-चित्-आनन्द, अनन्त और अद्वैत (५) भावों से भरपूर है। यहाँ के वृक्ष जड़ कहलाए जाने पर भी सदा चेतन हैं, ब्रह्म स्वरूप हैं और सर्वदा ब्रह्मानन्द-लीला रस में डूबे हैं। सदैव सभी ऋतुएँ विद्यमान हैं और यहाँ के वृक्ष सभी प्रकार के फूल, फल, सुगन्धित व्यष्टि एवं समष्टि रूप से पूर्ण हैं।

परब्रह्म परमात्मा तथा उसका परम धाम सभी प्रकार से पूर्ण है और उसमें से चाहे जितना ब्रह्मानन्द रस का उपभोग किया जाता रहे, उसकी पूर्णता को लेकर अक्षर ब्रह्म करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना करते रहें, वह सदैव पूर्ण ही बना रहता है। 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाशिष्यते' (बृहदारण्यक)। परब्रह्म से श्रेष्ठ, महान् और विस्तार वाला कोई नहीं है। परमधाम (ब्रह्मधाम) में सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, तारागण प्रकाश नहीं करते क्योंकि उसके सभी पदार्थ परब्रह्म के प्रकाश से सम्पूर्ण प्रकाश पाते हैं और ब्रह्मधाम प्रकाश रूप है। ब्रह्म धाम के स्वरूपों, वहाँ ने आनन्दमय चेतन पदार्थों का वर्णन संकीर्ण वृत्ति वाले लौकिक शब्द नहीं कर सकते है अतः उसे 'शब्दातीत' कहा गया है। लौकिक शब्द ज्ञान—जीव-जड़, चेतन-अचेतन के भेद को हमारी बुद्धि समाप्त नहीं कर पाती अतः बिना तारतम्य ज्ञान के केवल बुद्धि से ही ब्रह्म धाम के पदार्थों का सही वर्णन सम्भव नहीं है। विश्व का चेतन

स्वप्न के चेतन की भाँति मिथ्या है। जो स्वयं ही मिथ्या है, वह सत्य के भी सत्य को कैसे देख पायेगा। विश्व के ज्ञान से परब्रह्म परे है। शास्त्रों के वर्णन दिशा-दर्शन मात्र है।

जिसके प्रकाश से देखा जाता है उसे कैसे देखा जाय। नेत्र की पुतली नेत्र से ही देखी जा सकती है कान, हाथ, नाक से नहीं। इसी प्रकार ब्रह्मतत्व का वर्णन भी ब्रह्म स्वरूप से ही सम्भव है और ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही उसे श्रवण, मनन और धारण कर सकते हैं। मिथ्या भूमि पर सत्य का स्वरूप नहीं खड़ा किया जा सकता, स्वप्न की भूमि पर ईंट-पत्थर की इमारत नहीं खड़ी की जा सकती और उसी प्रकार शब्द अद्वैत भूमिका वाले पदार्थों का वर्णन नहीं कर सकते। विश्व का ज्ञान व्यावहारिक, सिनेमा के चित्रपट के समान प्रतीति मात्र, स्वप्न का एवं मिथ्या है। युक्ति, तर्क एवं बुद्धि से परे जाग्रत अवस्था का ज्ञान केवल ब्रह्म ज्ञान है।

परब्रह्म परमात्मा अविनाशी, स्वयं सिद्ध, प्रकाश स्वरूप, चिदघन और सच्चिदानन्दमय अनन्त, अद्वैत, अखण्ड, अपार, अजर, अमर सदा अपने प्रकाश में अवस्थित है। उसे तारतम्य (ब्रह्म-विद्या) ज्ञान से ही जाना जा सकता है (तारतम्येन जानाति सच्चिदानंद लक्षणम्)।

ब्रह्मपुर के एक सुदिव्य आवासीय महल (मन्दिर) है, जिसे ब्रह्म-भुवन कहते हैं। उसमें चौंसठ स्तम्भों का कमल पुष्प के समान गोल पुण्डरीक-मूल मिलावा है और उसी के मध्य परमात्मा विराजमान हैं। यह सबके आधार स्वरूप हैं। सर्वकारणात्मक स्वरूप (अक्षर ब्रह्म) का भी यही सर्वातीत आश्रय है। पर (सर्वोत्तम) अपने को अपर (अक्षर ब्रह्म) को परायण (परमधाम) को पूर्ण किये रहने से उसे परब्रह्म कहते हैं। सबको बृंहण (विकास) की ओर ले जाने से उसे परब्रह्म कहना ही उचित है।

साकार निराकार दोनों अविद्या (अज्ञान) की उपाधियाँ हैं। ब्रह्म के सगुण-निर्गुण वर्णन मिलने पर भी वह सभी उपाधियों से रहित है। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सगुण-निर्गुण, साकार, निराकार स्वरूप उपाधियों से पर है, वह अपने स्वयंसिद्ध सर्वातीत स्वरूप में नित्य एक रस अखण्ड विराजमान है और वही सबका उपास्य ब्रह्म है। परा नाम की विविध शक्तियाँ उसके लीलामय परमधाम में लीला वैचित्र्य की सिद्धि के लिए अपने-अपने स्वरूप में अनन्तरूप में दिखायी पड़ती हैं। इन सबकी अधिष्ठात्री श्यामा शक्ति है जो सदा एक रूप में एक रस शोभायमान है। यह शक्ति नित्य परमात्मा के साथ है इसी से परमात्मा शक्तिमान् कहा जाता है।

शक्ति और शक्तिमान् का कभी भेद नहीं माना जाता। अतः शक्ति सहित होने से उसे युगल स्वरूप माना गया है। यह युगलस्वरूप लौकिक द्वैत से भिन्न, विचित्र एवं विलक्षण है। यह युगल भाव नित्य है। एक होकर भी पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है। ब्रह्म के एक भाव का परित्याग करने पर दूसरे भाव के अस्तित्व पर विश्वास नहीं होता। पदार्थ और उसकी शक्ति, सूर्य और उसका तेज, चन्द्रमा और उसकी चाँदनी, शब्द और अर्थ, जल और तरङ्ग में नित्य युगलभाव विद्यमान है वैसे ही ब्रह्म में विलक्षण युगल भाव है। यह परमात्मा ही सबका स्वामी है, सभी प्राणियों का राजा है। शक्ति युक्त होने से इसे 'राजश्यामा' भी कहते हैं।

ब्रह्मधाम के पूर्णातपूर्ण होने से वहाँ सब कुछ उपस्थित रहता है। सर्वसामग्री युक्त होने से वहाँ कोई नवीन भाव नहीं उत्पन्न होते। वहाँ के सभी पदार्थ नित्य, चेतन,

सत्य-सनातन, स्वयंसिद्ध, दिव्य स्वरूप, ज्ञान-पूर्ण, सच्चिदानन्द मय, पृथक्-पृथक् होते हुए भी भेदरहित, अद्वैत भाव पूर्ण शोभायमान है। स्थिति और गति, भोग्य और भोक्ता, साधन और सिद्धि, कामना और प्राप्ति, दूर और समीप, थोड़ा और बहुत, एक और अनेक भावों की कल्पना और भेद तो संकीर्ण विश्व के चेतन में है, ब्रह्म धाम की पूर्णता से वहाँ इन भावों का होना उठना सम्भव ही नहीं है।

ब्रह्म की लीला आनन्दमय है और आनन्द लीलामय है। आनन्द रूपा सम्पूर्ण सामग्री अखण्ड और सुखप्रद है। सभी भाव ब्रह्म रूप हैं। सम्पूर्ण ब्रह्मधाम ब्रह्ममय एक होते हुए भी विविध लीलामय रूप में भासता है। ब्रह्म ही द्रवीभूत और घनीभूत होकर भोग्य और भोक्ता स्वरूप में सर्वत्र फैला है।

परमात्मा पूर्णात्पूर्ण होने से पूर्णावस्था (युवावस्था) सम्पन्न है अतः युगल किशोर हैं। आनन्द स्वरूप होने से लीलायुक्त है और इसलिए रसमय है। वह रसघन है अतः रस देने वाला है। वह ब्रह्मानन्द से पूर्ण है अतः सबको पूर्ण किये रहता है। वह अमृत स्वरूप है अतः उसकी सम्पूर्ण लीला अविनाशी है। वह भूमा है। परम धाम में सभी युवा हैं, बालक या वृद्ध नहीं।

दीपक की ज्योति और प्रकाश अलग नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा होता तो ज्योति के हटने से प्रकाश न हटता। ज्योति और प्रकाश एक स्वरूप भी नहीं कहा जा सकता। दीप ज्योति के हाथ में लगने से हाथ जल जाता है किन्तु प्रकाश हाथ पर पड़ने पर कुछ नहीं होता। अतः इन्हें अभेद (एक) कहना भी उचित नहीं। भेद की प्रतीति तथा अभेद के विद्यमान (भेद सहिष्णु अभेद) होने को 'तादात्म्य सम्बन्ध' कहते हैं। ब्रह्म धाम की ऐसी ही विचित्रता है। लीलामय पदार्थ अलग-अलग विद्यमान रहते हुए भी ब्रह्म स्वरूप होने से एकस्वरूप है। ब्रह्मतत्व के शब्दातीत होने से भेद-अभेद दोनों कल्पनाओं से परे होना भी कहते नहीं बनता। अद्वैत भूमिका का चेतन पदार्थों में भेद की कल्पना असंगत और मिथ्या है।

परमतत्व (ब्रह्मस्वरूप) का ज्ञान तपस्या, अधिक पूजा-पाठ, संन्यास-धारण, वेदाध्ययन, जल-अग्नि, सूर्योपासना आदि से प्राप्त नहीं होता। यह ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों के चरण की धूलि सेवन से उपलब्ध होता है।

उल्लू पक्षी को प्रकाश पुन्ज सूर्य भी अन्धकारमय प्रतीत होता है। स्वप्रकाश पूर्ण ब्रह्मानन्द का वर्णन सुन अनधिकारी को भी कुछ ऐसे ही भासने लगता है। दुर्बलता के कारण वह परमतत्व को ग्रहण नहीं कर पाता। श्वान अपने समक्ष रखे दर्पण में स्वयं को देख विरोधी समझ भौंकने लगता है। अपात्र पुरुष के हृदय के संस्कारों की हीनता और विचारों की दुर्बलता भ्रम के कारण बन जाते हैं। विरोधी मत स्थिर करने में व्यस्त व्यक्ति ब्रह्मज्ञान से वंचित रह जाता है।

परब्रह्म के अंग-प्रत्यंग नित्य होने से सापेक्ष नहीं हैं और हमारे शरीर के समान भोजन, अन्न, पान आदि की अपेक्षा नहीं रखते। प्रकृतिजन्य दोष वहाँ उपस्थित नहीं होते और वह हाँड़, माँस, मज्जा, रक्त आदि से रहित हैं। वह आनन्दस्वरूप, सर्वत्र भेदरहित, चेतन, स्वयं-सिद्ध, दिव्यस्वरूप हैं। वह पुरुष-स्वरूप है।

परब्रह्म की इच्छा मात्र से पदार्थ उपस्थित हुआ, और पूर्ण होते ही पदार्थ तिरोहित हो गया। इस प्रकार आविर्भाव-तिरोभाव की लीला वहाँ होती रहती है। वह

सत्य भूमिका है अतः संकल्प नहीं उठते, वहाँ कोई वस्तु घटती, बढ़ती नहीं, सभी एकरस हैं।

मूल मन्दिर के चारों ओर ६-६ हजार मन्दिरों (प्रकोष्ठों) की दो पंक्तियाँ (हार) हैं। भीतर की ओर और भी गोल चौकोर (चौरस) के चारों ओर कितनी ही पंक्तियाँ हैं। गोल मन्दिरों की पंक्तियों में पाँचवीं पंक्ति का पहला एक गोल मन्दिर जो मुख्य प्रवेश द्वार के सामने है और चौंसठ स्तम्भों की दो पंक्तियों (हारों) से घिरा है 'मूल-मिलावा' कहा जाता है। इसके बीच में चमकते हुए सोने के रंग का रत्नों से जड़ा हुआ एक सिंहासन है। इस पर विराजमान युगल स्वरूप श्री राजश्यामाजी (पूर्णब्रह्म परमात्मा) इस जगत के मोहमाया के रहस्य को ब्रह्मसृष्टियों को (शाश्वती समा) दृष्टि-गोचर करा रहे हैं। सिंहासन के चारों ओर शक्ति समूह अपने-अपने स्थान पर विराजमान इस कौतुक को देखने के उत्सुक हैं। परब्रह्म के विराजने के स्थान की शोभा और उपमा शब्दातीत अप्राकृत एवं अनादि होने से मन-वाणी से परे, वर्णन में नहीं आती।

प्रथम भूमिका अत्यन्त शोभापूर्ण 'आधार-भूमिका' कही जाती है। दूसरी भूमिका में मूल-मन्दिर के प्रवेश द्वार से दाहिनी तरफ चौरस 'षोडश-वेश्म' दर्पण सदृश बने हैं और जिनमें नीचे ऊपर सर्वत्र सबका प्रतिबिम्ब अनन्त रूप से दृष्टिगोचर होता है, अतः इसे 'मति-विभ्रमा' भी कहा जाता है। मूल मन्दिर में मुख्य प्रवेश द्वार के ऊपर तीसरी भूमिका में एक बड़ी बैठक है जो छज्जा और मूल मन्दिर की दीवाल का कुछ स्थान लेकर सुशोभित है। इसे 'पड़साल' कहते हैं। वहाँ प्रातः से लेकर तीन प्रहर तक श्री पूर्णब्रह्म परमात्मा तथा शक्ति समूह सुन्दर साथ अनेक प्रकार के आनन्द लेते हैं। यहीं पर वह ब्रह्म धाम के पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं। अक्षर ब्रह्म भी यहाँ नित्य ही श्री पूर्ण ब्रह्म के दर्शन करने आते हैं। यहाँ सुन्दर साथ और मूल स्वरूप के बीच परस्पर प्रेम संवाद होता है। नाना पदार्थों के आरोगने की लीला भी यहाँ होती है। इसे 'सम्वाद-भूमिका' अथवा 'भोग-भूमिका' भी कहते हैं।

चौथी भूमिका पर चौरस हवेली में एक प्रहर रात्रि तक नाना प्रकार के नृत्य, गान, कला, राग-रागिनी के आनन्द का उदय रहता है, अतः इसे 'नृत्यमयी भूमिका' कहते हैं। पाँचवीं भूमिका मूल-मन्दिर के मध्य में प्रवाली रंग के मन्दिर में शयन लीला का स्थान है। तमोरूप निद्रा का यहाँ अभाव है, पूर्णात्पूर्ण चिद्घन ज्ञान और आनन्द की स्फूर्ति के कारण नित्य जाग्रदवस्था है। यह शयन श्रम दूर करने के लिए निद्रा सापेक्ष नहीं है, अपितु यह ब्रह्मानन्दपूर्ण है और इसमें मुक्त दशा के आनन्द का अनुभव है। इसे 'मुक्ति-भूमिका' भी कहते हैं।

छठी भूमिका में दहलान हैं। यहाँ विमान और सुखपालों के स्थान हैं। यहाँ से इच्छानुसार मन की तेजी से चलने वाले विमानों पर बैठकर वन-उपवन का आनन्द लेने जाते हैं। इसे 'विमान भूमिका' भी कहते हैं। सातवीं भूमिका में झूलने की लीला का आनन्द है। नाना प्रकार के विचित्र हिंडोलों पर आमने-सामने ताली दे देकर झूलते हैं। इसे 'हिंडोला भूमिका' कहते हैं। आठवीं भूमिका में चार-चार हिंडोलों की ताली पड़ती है। सातवीं में दो-दो हिंडोलों की ताली पड़ती है। मूल मन्दिर के नवें उच्च भाग में चारों ओर विशाल दिव्य छज्जे हैं। इन पर सब ओर भाँति-भाँति के सिंहासन और अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रत्न जड़ी हुई कुर्सियाँ (बैठकें) पड़ी हैं।

जाये तो ऐसा प्रतीत होगा कि वहाँ बहुत-सा प्रकाश भरा पड़ा होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। यह सूर्य तो जड़ है और इसका प्रकाश भी जड़ है। परम धाम में जब अन्धकार ही नहीं है तो उसका प्रतिद्वन्द्वी (विरोधी) प्रकाश किस प्रकार रहेगा। यहाँ का प्रकाश ग्रीष्म तथा शीत ऋतुओं में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। इसके अतिरिक्त सूर्य का प्रकाश उष्ण है। चन्द्र का शीतल है, अग्नि का दाहक है, जठराग्नि का पाचक, दीपक और बिजली का प्रकाशक अर्थात प्रकाश भिन्न-भिन्न प्रकार का है। परम धाम का प्रकाश, नित्य, चेतन, सर्वज्ञता गुण पूर्ण, सुखद, भोक्ता, अन्तर्यामी, साधक, प्रापक, शीतल, आकर्षक, मनमोहक, सर्व ऐश्वर्य पूर्ण, परात्पर, विलक्षण, सर्वत्र एकरस है। अतः सांसारिक पदार्थों अथवा संसार के ज्ञात प्रकाशों से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।

मृत्यु लोक के क्षणिक सुखों से पूर्णात्पूर्ण नित्यानन्द ब्रह्म लोक के आनन्द की तुलना शब्दों के माध्यम से किया जाना सम्भव नहीं है। हिमालय पर्वत के गुरुत्व को रुई के रेशों को नहीं बताया जा सकता। उसी प्रकार ब्रह्म धाम के अनन्त, अपार, असीम, पदार्थ का; जो एकरस, चेतन, दिव्य स्वरूप, अखण्ड, अविनाशी हैं; शब्द अथवा लौकिक साधनों द्वारा व्यक्त किया जा पाना असम्भव है।

श्री मद्भगवद्गीता के अनुसार इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है और मन से श्रेष्ठ बुद्धि। बुद्धि से श्रेष्ठ उसका स्वामी जीव है। जीव से श्रेष्ठ और महान अव्याकृत है जिसने इन सब को बन्धनों में डाल रखा है। अव्याकृत से भी विलक्षण परमात्मा है जिसे जानकर ही जीव अविनाशी हो जाता है।

With Complements

from Sri S.P. Arya I.A.S.

Commissioner, Consolidation, U.P.
Lucknow

44008
43688
office

Resi- B29 - Butler palace Colony

Phone 34834 (Residence)